International Journal for Research Trends in Social Science & Humanities
Volume 4, Issue 2
Mar-Apr 2026, PP 1-9

समकालीन हिंदी कविता में स्त्री विमर्श: अस्मिता, प्रतिरोध और सौंदर्यशास्त्र

डॉ पूनम सिंह
(असि०प्रो०, हिन्दी)
गिन्दो देवी महिला महाविद्यालय, बदायूँ (उ०प्र)

शोधसार

यह लेख समकालीन हिंदी कविता के विस्तृत फलक पर स्त्री विमर्श के सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक विकास की समीक्षा करता है। बींसवीं सदी के उत्तरार्ध से लेकर वर्तमान तक हिंदी कविता के पितृसत्तात्मक समाज को चुनौती देते हुए स्त्री को वस्तुपरकता से मुक्त कर एक सचेतन विमर्श के केंद्र में स्थापित किया।यह शोध स्त्री के आत्म संघर्ष, देह राजनीति, अस्मिता बोध और वर्चस्ववादी सामाजिक सरंचनाओं के विरुद्ध उभरे 'प्रतिरोध के स्वर' का सूक्ष्म विश्लेषण करता है।साथ ही यह अध्ययन रेखांकित करता है कि कैसे समकालीन कविता ने घरेलू हिंसा, श्रम विभाजन और वर्गीय शोषण के विरुद्ध एक सशक्त विमर्श तैयार किया है।

मुख्य शब्द- पितृसत्ता, समकालीन, भूमंडलीकरण, स्त्री-मुक्ति, लैंगिक भेदभाव आदि।

समकालीन कविता उस कविता को कह सकते है जो हमारे वर्तमान समय समाज राजनीति और संस्कृति की सच्चाई को व्यक्त करती है। सामान्यतः इसमें 1980 के बाद से लेकर आज तक लिखी जा रही कविताओं को शामिल किया जा सकता है।1980 के बाद हिंदी कविता में एक बड़ा बदलाव आता है। इस समय पहचान आधारित अस्मिताएं जैसे दलित, स्त्री,आदिवासी आदि मुखर होती है। समकालीन हिंदी कविता में स्त्री विमर्श पितृसत्तात्मक समाज के खिलाफ़ स्त्री अस्मिता, स्वतंत्रता और समानता की मांग को केंद्र में रखता है। यह 1990 के दशक से भूमंडलीकरण और नवउदारवाद के दौर में उभरा, जहाँ स्त्री के संघर्ष स्वप्न, और अंतर्विरोधो को व्यक्त किया गया। हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श की जड़ें हमें वेदों से दिखाई देता है, जहाँ आपला, लोपामुद्रा जैसी विदुषी स्त्रियां थीं। भक्ति काल में मीराबाई ने पितृसत्ता का विरोध किया। आधुनिक काल में महादेवी वर्मा की 'शृंखला की कड़ियां' ने नारी विमर्श की शुरुआत की। समकालीन दौर में 1990 के बाद भूमंडलीकरण ने स्त्री को वस्तु बनाया जिसके विरुद्ध कविताएँ उभरी।

समकालीन हिंदी कविता में स्त्री की विविध छवि उभर कर आई है। यहाँ स्त्री अपनी परंपरागत छवि भी लिए हुए हैं और आधुनिक मध्यवर्गीय, आदिवासी, दलित, मजदूर, नौकरीपेशा, घरेलू कामकाज स्त्री भी है और आंदोलन करने वाली, पितृसत्तात्मक समाज से मुठभेड़ करने वाली, राजनीतिक, सामाजिक हर वर्ग की स्त्री है। अस्सी-नब्बे के दशक में कवयित्रिया शहरी मध्यवर्गीय जीवन जीने वाली स्त्रिया है। इनके कविताओं में नगरी जीवन का संत्रास,

घुटन आदि इनकी कविता का विषय है। यहाँ स्त्री अपनी व्यक्तिनिष्ठ सत्ता को तलाश रही है। लेकिन पुरुष अब भी उसे वस्तु ही समझने की भूल कर रहा है।सविता सिंह अपनी कविता'नई उलझन' में पितृसत्तात्मक समाज की मानसिकता को व्यक्त करते हुए कहती हैं-

" ***कुछ लोग समझ पा रहे हैं***
क्यों इतनी उद्विग्न हैं औरतें आजकल
क्यों छिपाकर नहीं रखती अपने दुख पहले की तरह
क्यों चाहती हैं फिचना गन्दे लत्ते कपड़े सार्वजनिक रूप से
× × × × × ×
कुछ लोग समझ नहीं पा रहे
समय बदलता है
साथ मे उसकी खब्त भी" (1)

स्त्री आंदोलन का सूत्रपात यूरोप में हुआ था'।सिमोन द बुआर' जैसी स्त्रीवादियों ने इसे गति प्रदान की। हिंदी में इसकी शुरूआत छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा ने किया है।अपनी 'श्रृंखला का कड़ियाँ' पुस्तक में वह लिखती हैं कि "जिसे अशांत वातावरण में पुरुष अपनी इच्छा और विश्वास के अनुसार स्त्री को चलाना चाहता था। उसमें इस भ्रमात्मक धारणा को की स्त्री स्वतंत्र व्यक्तित्व से रहित पति की छाया मात्र है, सिद्धांत का रूप दे दिया गया।इस भावना ने इतने दिनों में कितना अपकार कर डाला है। यह इस जाति की युगांतर तक न भंग होने वाली निद्रा और निश्चेष्टता को देखकर ही जाना जा सकता है।" (2) समाज ने सदियों से ही इस स्त्रियों के कार्यों को तय कर रखा है कि वह क्या करेगी और क्या नहीं करेगी इस संबंध में अनामिका अपनी कविता बे- जगह में लिखती हैं-

"***याद था हमें एक-एक क्षण***
आरम्भिक पाठों का-
राम पाठशाला जा
राधा,खाना खा
× × × ×
राम,देख यह तेरा कमरा है !
और मेरा ?
ओ पगली
लड़कियां हवा धूप मिट्टी होती है।
उनका अपना कोई घर नहीं होता है।" (3)

पुरुषवादी मानसिकता का उल्लेख करते हुए राजेंद्र यादव ने लिखा है "समाज ने स्त्री को सिर्फ तीन नाम दिए पत्नी,रखैल और वेश्या। इसके अलावा वह किसी चौथे संबंध को स्वीकार ही नहीं करता है पुरुष प्रधान समाज में इस स्त्री का नाम जन्म से मृत्यु तक पिता पति और पुत्र के साथ जुड़ा है इनसे मुक्ति के लिए अध्यात्म या आत्महत्या के रास्ते ही उसे चुनने पड़ते हैं। नीलेश रघुवंशी की कविता "भली स्त्री" में स्त्री जीवन की इस विडंबना को देखा जा सकता है-

"***पीटती अपमान सहती***

International Journal for Research Trends in Social Science & Humanities
Volume 4, Issue 2
Mar-Apr 2026, PP 1-9

सिसकती धीरे- धीरे।
अचानक किसी के आ जाने पर
जुकाम कहकर सुड़कती नाक।
बाहर से सुखी सम्पन्न भीतर से टूटी- *(5)*

स्त्रियों की स्थिति इतनी दयनीय होती है कि वह सारे जुल्म सहकर भी मुँह बंद रखती है। क्योंकि वह जुल्म को ही अपने नियति मान चुकी होती है उन्हें पता होता है कि माँ -बाप,समाज सब उससे चुप रहने की ही सलाह देंगे ।अत्याचारत जब एक दिन असहनीय हो जाता है तो वह इहलीला ही समाप्त कर देती है-

"या जब वे चौथी मंजिल से नीचे कूद गयी
या जब एक दिन घर भर में चूड़ियों के टुकड़े,खून और अपने बाल
बिखेर कर वे कहीं अकेली भाग गयी।
और बिना पूछे कहीं भी जाने वाली रेलगाड़ी में बैठ गयी
या जब बिना किसी को कुछ बताये
उन्होंने खुद ही चुपचाप सल्फास खा लिया" *(6)*

धर्म का धर्म का सहारा लेकर पितृसत्ता ने धीरे-धीरे स्त्री को सारे सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया। उसकी स्थिति बद से बदतर होती चली गई। पुरुष शासक बन बैठा। स्त्री इस व्यवस्था से मुक्त होना चाहती है। रंजना जायसवाल अपनी कविता "जब मैं पुरुष हूँ" में पितृसत्ता पर व्यंग्य करते हुए लिखती हैं-

"मैं पुरुष हूं और जब मैं पुरुष हूं
तो स्त्री सम्पत्ति है मेरी
खरीद दूं, बेचूं, बंधक रखूं
मारूँ, जलाऊँ या नष्ट करूं
यह मेरी मर्जी है
वैसे भी इससे अधिक क्या उपयोग है स्त्री का।" *(7)*

यह पितृसत्तात्मक समाज का सच है। वह स्त्री को एक वस्तु से ज्यादा कुछ नहीं समझता। उसका जब मन चाहता है अपनाता है और जब मन चाहता है फेंक देता है,किसी वस्तु की भाँति।महिलाओं को अक्सर हाउस वाइफ और बेंड पार्टनर के रूप में ही आंका जाता है ऐसा करके समाज और सभ्यता के निर्माण में उसकी भागीदारी को नकारा जाता है और उसे उपेक्षित किया जाता है। इस को यही उपेक्षा जीवन में क्षोभ और खालीपन लाती है समाज में स्त्री की जगह ढूँढती हुई अनामिका लिखती हैं-

"जिनका कोई घर नहीं होता
उनकी होती है भला कौन से जगह?
कौन सी जगह होती है ऐसी
जो छूट जाने पर औरत हो जाती है।
कटे हुए नाखून
कंघी में फंस कर बाहर आए केशों सी
एकदम से बहार दी जाने वाली?" *(8)*

International Journal for Research Trends in Social Science & Humanities
Volume 4, Issue 2
Mar-Apr 2026, PP 1-9

योजना के तहत पितृसत्ता द्वारा स्त्री को आर्थिक रूप से कमजोर किया गया ताकि वह सदैव पुरुषों पर ही निर्भर हो जाएं क्योंकि आर्थिक स्वावलंबन स्त्री मुक्ति के लिए जरुरी था। उसे पैतृक संपत्ति में अधिकार से वंचित रख कर उसका शोषण किया गया। स्नेहमयी चौधरी अपनी कविता "ठौर ठिकाना" में लिखती हैं–

"मुझको तो
अब जाना है
जहां मेरा ठिकाना है
ठौर से अब क्या लेना देना?"(9)

प्रभा खेतान कहती हैं कि स्त्री को अन्या की स्थिति में रहना सिखाया जाता है। बचपन में वह पिता के आदेश पर चलती है बाद में पति के संरक्षण में। समाज और माता–पिता द्वारा स्त्री को शुरू से ही आत्मदान की ही शिक्षा दी गई है। इस संबंध में किरण अग्रवाल की कविता 'वह जो नहीं हो सकी' कि निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य है–

" जो क्रमशः पिता,पति और पुत्र के हाथों
स्थानांतरित होती रही ताउम्र
तीनों ने ही अपने-अपने ढंग से उसको इस्तेमाल किया
और वह हाथ बाँधे
उनके आदेश के पालन हेतु खड़ी रही अंतिम साँस तक" (10)

मैत्रेयी पुष्पा स्त्री मुक्ति के संदर्भ में कहती हैं कि "यह सवाल आज औरत को चारों ओर से घेर रहा है कि आखिर उसे किस से मुक्ति चाहिए। यदि घर से तो रहोगी कहा? यदि परिवार से तो सुरक्षा कहा पाएगी? तब ज़ाहिर है कि किसी न किसी गुण से लैस समाजिक इकाई के बिना उसका गुजारा नहीं। अब यदि स्त्री की ओर से यह कहा जाए कि मुक्ति मुझे उस व्यवहार से चाहिए जो हर पल पीछे ढकेलता है,,,,, मैं उन नियमों को बर्दाश्त नहीं कर सकती जो पुरुष व्यवस्था ने अपनी सुविधानुसार बनाए हैं। मनुष्य होने के नाते स्त्री होकर मैं वही सब चाहता हूँ जो पुरुषों ने अपनी बपौती समझकर हथियाया हुआ है।। वर्तमान समय में इस स्त्री के जीवन मूल्य के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। अब वह अपने स्वतंत्र अस्तित्व को इस स्थापित कर आजाद जीवन जीना चाहती है। सविता सिंह लिखती –

"हूँ ऐसी गति में
उद्विग्न इतनी कि
तोड़ती हर उस डोर को जिससे बंधी हूँ।" (12)

पितृसत्ता के विरुद्ध उनकी आवाज बुलंद है।निर्मला पुतुल अपनी कविता' स्वर्गवासी पिता के नाम पाती' में लिखती है–

"इन्हीं लोगो ने छीना है बचपन
छीने हैं मेरे अनब्याहे सपने
मेरे हिस्से का वो खुला आकाश

International Journal for Research Trends in Social Science & Humanities
Volume 4, Issue 2
Mar-Apr 2026, PP 1-9

मेरे उन्मुक्त हंसी मेरी जवानी
कैद होकर रह गई हूं मैं" (13)

पितृसत्ता के समक्ष लैंगिक भेदभाव से मुक्ति, स्त्रियों की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और शैक्षिक समानता का आंदोलन स्त्री विमर्श के रूप में हमारे सामने आता है समकालीन कवयित्रियों ने पितृसत्तात्मक समाज के दोहरी मानदंडो लिंग भेद की राजनीति और स्त्री उत्पीड़न के कारणों को पहचानते हुए उसका यथार्थ चित्रण किया है जिससे स्त्री विमर्श को एक नई दिशा मिलती है।

संदर्भ सूची

1. **प्रसाद, कमला** (संपा.). (वर्ष अज्ञात). *स्त्री मुक्ति का सपना* (पृ. **142).**
2. **वर्मा, महादेवी.** (वर्ष अज्ञात). *शृंखला की कड़ियाँ* (पृ. **13).**
3. **अनामिका.** (वर्ष अज्ञात). *खुरदरी हथेलियां* (पृ. **72).**
4. **यादव, राजेन्द्र.** (वर्ष अज्ञात). *आदमी की निगाह में औरत* (पृ. **19).**
5. **महाजन, उषा.** (वर्ष अज्ञात). *उठो अन्नपूर्णा साथ चले* (पृ. **27).**
6. **वर्मा, राधा.** (वर्ष अज्ञात). *समकालीन हिंदी कविता के बदलते सरोकार* (पृ. **69).**
7. **प्रमिला, के. पी.** (वर्ष अज्ञात). *स्त्री अस्मिता और समकालीन कविता* (पृ. **4).**
8. **कश्यप, अभिषेक** (संपा.). (वर्ष अज्ञात). *अनामिका: एक मूल्यांकन*. नई दिल्ली: सामाजिक बुक्स (पृ. **13).**
9. **यादव, राजेन्द्र** (संपा.). (**2009,** नवम्बर). *हंस* (पत्रिका अंक) (पृ. **12).**
10. **वर्मा, राधा.** (वर्ष अज्ञात). *समकालीन कविता के बदलते सरोकार* (पृ. **73).**
11. **पुष्पा, मैत्रेयी.** (वर्ष अज्ञात). *खुली खिड़कियां* (पृ. **69).**
12. **सिंह, सविता.** (वर्ष अज्ञात). *अपने जैसा जीवन* (पृ. **38).**
13. **नागर, विष्णु** (संपा.). (**2012).** *शुक्रवार: साहित्य वार्षिकी* (पृ. **111).**